नन्नीबाई वगैरह

बनाम

गीताबाई

बी-पी-सिन्हा जफेर इमाम तथा सुब्बाराव जे-जे-

कृषक संरक्षण & विशिष्ठ न्यायाधीश का क्षेत्राधिकार निष्पादन विक्रय क्या उस विधिक प्रतिनिधि को भी आबद्ध करती है जो पक्षकार नहीं है & सीमा & मिताक्षरा विधि विभाजन & क्या दस्तावेज अनिवार्य रूप से पंजीकृत हो कब &ग्राह्यता & सांगली राज्य कृषि संरक्षण अधिनियम 1936 का भारतीय परिसीमा अधिनियम 1908 का IX अनुच्छेद 12 134 एवं 148 भारतीय पंजीकरण अधिनियम 1908 का अधिनियम XVI धाराएं 17 एवं 49

यह अपील सांगली राज्य कृषि संरक्षण अधिनियम 1936 का 1 के अन्तर्गत अधिकारिता रखने वाले विशिष्ठ न्यायाधीश के न्यायालय में प्रस्तुत मोचन पर कब्जे के लिए वाद के प्रतिवादीगण द्वारा प्रस्तुत की गई हैं। उनका यह मामला है कि गिरवी रखी गई संपत्तियों को नीलामी में बेचा गया था जिन्हें उनके पिता ने खरीदा एवं उनमें से अधिकतर को वाद संस्थित करने से 12 वर्ष पूर्व ही अन्य व्यक्तियों को बेचान कर दिया अतः यह वाद अवधि बाधित है। विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया

गया। अपील में सांगली के उच्च न्यायालय ने वादी को मूल वादपत्र में मोचन के लिए राहत का अनुतोष जोड़ने की अनुमति देते हुए मूल वादपत्र को संशोधित करने की अनुमति दी और वाद प्रतिप्रेषित किया। इसके बाद विचारण न्यायालय ने वाद को आंशिक रूप से डिक्री करते हुए यह निर्णित किया कि बंधक संपत्तियों के कुछ हिस्सों के संबंध में ही वाद अवधि बाधित है। दोनों पक्षों ने बंबई उच्च न्यायालय में अपील प्रस्तुत की जो एकसाथ सुनी गई। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी की अपील को खारिज और वादी की अपील को स्वीकार करते हुए यह निर्णित किया कि परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 148 ना कि अनुच्छेद 134 परिसीमा अधिनियम लागू होगा। परिणामतः वादी का वाद पूर्णतया डिक्री किया गया।

अभिनिर्धारित प्रारंभिक आपत्ति कि विशिष्ठ न्यायाधीश को सांगली राज्य कृषि संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत सुनवाई का अधिकार नहीं है निरस्त किया जाना चाहिए। अधिनियम द्वारा 1915 की निर्धारित तिथि रेखा ऐसे उन अनुतोष के संदर्भ में है जो बंद लेनदेन को फिर से खोलने के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है और ऐसे लेनदेन जो 1915 के पूर्व के हैं के संबंध में अनुतोष देने में विशिष्ठ न्यायाधीश की अधिकारिता को वर्जित नहीं करते।

ना ही यह तर्क दिया जा सकता है कि ऐसी धन डिक्री जिसमें वादी के मृतक पिता के स्थान पर उसके वारिस या विधिक प्रतिनिधि के रूप में

वादी को प्रतिस्थापित नही किया गया ना ही उसे पक्षकार बनाया गया और पक्षकारों द्वारा कोई विवाद उत्पन्न नहीं किया गया, ना ही न्यायालय ने यह निर्णित किया कि वास्तविक विधिक प्रतिनिधि कौन थे के निष्पादन में रहन सम्पत्ति की नीलामी डिक्री को पहले अपास्त करने के लिए वादी बाध्य थी। वादी उस विक्रय को नजरअन्दाज करने की अधिकारिणी है तथा वाद अनुच्छेद 12 परिसीमा अधिनियम के अन्तर्गत वर्जित नहीं है।

मलकारजुन बिन शिदरमप्पा पसारे बनाम नरहरी बिन शिवप्पा 1900 एल आर- 27 आई- ए- 216 सन्देह एवं अन्तर किया। मोचन पर कब्जे के वाद में अनुच्छेद 134 परिसीमा अधिनियम को आकृष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रतिवादी सकारात्मक रूप से सिद्ध करे कि रहनदार अथवा उसके हित उत्तराधिकारी ने रहन द्वारा न्याय से अधिक हित भाग का अंतरण किया है। जबकि प्रस्तुत प्रकरण में यह नहीं किया गया अनुच्छेद 134 लागू नहीं होगा और केवल जो अनुच्छेद लागू किया जा सकता है वह अनुच्छेद 148 परिसीमा अधिनियम होगा।

हिंदू विधि के मिताक्षरा स्कूल के अन्तर्गत विभाजन या तो 1 & सहसदस्य की संयुक्त स्थिति का विच्छेद करते हुए बिना विशिष्ट भाग के आवंटन के हिस्से को सीमांकित कराकर या 2 & विशिष्ट संपत्तियों को उनके हिस्से के अनुसार माप और सीमांकन कराकर आवंटित करते हुए विभाजन के द्वारा। उत्तरार्ध यदि लिखित में हो तो वह धारा 17 1 बी

भारतीय पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य होगा जबकि पूर्व का नहीं। नतीजतन प्रस्तुत प्रकरण में वादी द्वारा प्रस्तुत अपंजीकृत दस्तावेज जो कि पूर्व की विधि के अनुसार विभाजन को बताने के सीमित प्रयोजन से है धारा 49 भारतीय पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत नहीं आते और साक्ष्य में ग्राह्य हैं।

सिविल अपीलीय न्याय निर्णय & सिविल अपील नं0 177/1954

बंबई उच्च न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री दिनांकित 9 अक्टूबर 1950 प्रथम अपील सं0 361,363/1948 जो मूल डिक्री से निर्णय एवं डिक्री दिनांकित 31 जुलाई 1946 जो विशेष न्यायाधिकरण मगल वेधे ने विशिष्ठ वाद वाद सं0 1938 के 1322 में पारित की।

एल 0 के0 झा राजेश्वर नाथ जे0 बी0 दादाचंजी एवं एस 0 एन 0 एंडले अपीलार्थी हेतु

के0 आर 0 बेंगरी तथा के0 आर 0 चैधरी प्रत्यर्थी हेतु

1958 अप्रेल 14 न्यायालय द्वारा निम्न निर्णय प्रसारित किया गया

सिन्हा जे- प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत यह अपील बोम्बे उच्च न्यायालय द्वारा प्रदान की गई अनुमति से उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 9 अक्टूबर 1950 जो कि विशिष्ठ न्यायाधीश न्यायाधिकरण न्यायालय मंगलवेधे के निर्णय दिनांक 31 जुलाई 1946 वाद सं0 1938 के 1322 दो

क्रोस अपील प्रथम अपील 361/1948 अपीलान्ट की अपील खारिज की गई और वादी की अपील नं0 363/1948 स्वीकार की गई। वादी प्रत्यर्थी ने एक और वाद सं0 1894/1937 जो कि विशेष वाद सं0 1322/1938 के साथ ही विचारण किया गया उच्च न्यायालय के निर्णय से पूर्व वाद खारिज किया गया और इस न्यायालय के समक्ष कोई अपील प्रस्तुत नहीं की गई।

जिस वाद से यह अपील उत्पन्न हुई विशेष वाद 1938 का सं- 1322 सांगली राज्य कृषक संरक्षण अधिनियम के प्रावधानों के तहत स्थापित किया गया था जो उस राज्य के कृषकगण को ऋण से कुछ राहत प्रदान करता था जो उस समय ब्रिटिश इण्डिया कहलाये जाने वाले स्थान से बाहर था। मूल रूप से तैयार किये गए मुकद्में में दो बन्धकों के संबंध में खातों की प्रार्थना की गई यद्यपि वास्तव में तीन बंधक थे जो कि विस्तृत रूप में आगे उल्लेखित किये जाएंगे तथा उन बंधकों में निहीत भूखण्ड के कब्जे के लिए। प्रतिवादी सं0 1 ने 6 जनवरी 1940 को वादोत्तर प्रस्तुत करते हुए वाद को मुख्य रूप से इस आधार पर लडा कि वादी का बन्धक सम्पत्ति के संबंध में हुए घटनाक्रम के कारण कोई स्वामित्व नही है

यह कि बन्धक सम्पत्ति नीलामी में बेची गई और प्रतिवादी के पिता द्वारा खरीदी गई अतः वे उसके पूर्व स्वामी हो गएय और यह कि उसने अधिकतर सम्पत्ति दूसरे व्यक्तियों को बेच दी जो पूर्ण स्वामी के रूप में उन सम्पत्तियों को धारण किये हुए है। प्रतिवादी सं0 3 जो कि मूल

रहनदार का भी प्रतिनिधित्व करता है ने प्रतिवादी सं0 1 की पुष्टि करते हुए पृथक से वादोत्तर प्रस्तुत किया। प्रतिवादीगण ने जो मूल रहनदार या उसके वारिसों के जरिये अन्तरती हुए में से केवल प्रतिवादी सं0 8 ने 26 मार्च 1940 को वादोत्तर प्रस्तुत करते हुए मुख्यतः प्रतिवादी सं0 1 के वादोत्तर की पुष्टि की और यह जोडते हुए कि उसने बन्धक सम्पत्ति में से अधिकतर को खरीद लिया है जब रहनदार वाद ससिथत होने से 12 वर्ष पूर्व ही स्वामित्व प्राप्त कर चुका है।

विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांकित 26 नवम्बर 1941 के द्वारा वाद मय खर्चा खारिज किया। हारे हुए वादी की अपील पर संगली राज्य के उच्च न्यायालय की विशेष पीठ ने निर्णय दिनांकित 13 जून 1944 के द्वारा वाद को पुनः विचारण हेतु प्रतिप्रेषित करने से पहले वादी को वादपत्र संशोधित करते हुए मोचन का अनुतोष जोडने की अनुमति दी।

यह प्रकट हुआ कि प्रतिप्रेषित किये जाने के बाद वाद लंबित रहने के दौरान फरवरी 1945 में प्रतिवादी सं0 2 की मृत्यु के बाद प्रतिस्थापित किये जाने हेतु प्रार्थनापत्र पेश किया गया परन्तु वह प्रार्थनापत्र न्यायालय द्वारा इस आधार पर अस्वीकार किया गया कि उस प्रतिवादी के विरूद्ध वाद उपक्षमित हो गया है। विवाद्यकों के पुनः विरचन और पुनः वाद को सुनवाई करने के बाद विचारण न्यायालय ने निर्णय एवं डिक्री दिनांक 31 जुलाई 1946 के द्वारा प्रतिवादी सं0 6 लगायत 9 जो कि जो कि

विक्रयपत्र वर्ष 1919 और 1922 के जरिये 12 वर्ष से अधिक समय से बंधक सम्पत्ति के हिस्से प्राप्त किये हुए थे के विरूद्ध अनुच्छेद 134 परिसीमा अधिनियम के अन्तर्गत वाद अवधि बाधित निर्णित करते हुए खारिज किया गया। न्यायालय ने बंधक सम्पत्ति आर0एस0 नं0 1735 जिसका क्षेत्रफल 16 एकड 31 गुंठा के संबंध में प्रतिवादी सं0 3 के विरूद्ध वाद डिक्री किया और आर0एस0 नं0 334 के लिए प्रतिवादी सं0 1 के वारिसान के विरूद्ध वाद डिक्री किया। हर पक्षकार को अपना खर्चा स्वयं वहन करने के आदेश दिये गए। इस निर्णय के विरूद्ध प्रतिवादी ने प्रथम अपील अपील सं0 361/1948 और वादी ने क्रोस अपील अपील सं0 1963/1948 बाॅम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की। दोनों अपीलों को दो अन्य क्रोस अपील जो कि ऊपर वर्णित वाद से उत्पन्न हुई के साथ सुना गया। उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय एवं डिक्री दिनांक 09 अक्टूबर 1950 के द्वारा प्रतिवादी की अपील 361/1948 अस्वीकार कर खारिज की और वादी की अपील नं0 363/1948 को मय खर्चा डिक्री करते हुए यह निर्णित किया कि परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 134 लागू न होकर अनुच्छेद 148 वाद में लागू होगा और यह इसलिए अवधि बाधित नहीं है। परिणामतः वादी का वाद पूर्णतया डिक्री किया गया।

अतः प्रतिवादीगण द्वारा यह अपील है। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तथ्यों और विधि पर अनेक प्रश्न उठाये गए परन्तु उन

पर विचारण करने से पहले यह सुविधाजनक होगा कि प्रारम्भिक बिन्दुओं को निर्णित किया जाए। अपने तर्कों में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रथमतः यह तर्क रखा कि वाद सांगली राज्य कृषक संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत रचित विशिष्ठ न्यायालय के सुनवायी क्षेत्राधिकार से बाहर है। उक्त अधिनियम के प्रावधानों का संदर्भ देते हुए यह तर्क रखा गया कि अधिनियम विशिष्ट न्यायालय को खाते लेने और केवल वर्ष 1915 तक के बन्द खातों को पुनः खोलने की अधिकारिता रखते है जबकि वाद में जो लेनदेन वाद की विषय वस्तु है वो 1898, 1900 और 1901 की हैं विशिष्ट न्यायालय को इस लेनदेन में जाने और कृषक वादी को कोई अनुतोष देने की अधिकारिता नहीं थी। हमारे मत अनुसार इस तर्क में काई बल नहीं है। ऊपर वर्णित सांगली राज्य कृषक संरक्षण अधिनियम में वर्ष 1915 को दिनांक रेखा रखा गया है, जिसके परे न्यायालय को बन्द लेनदेन को पुनः खोलने की कोई अधिकारिता नहीं है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि 1915 से पूर्व के लेनदेन के संबंध में कोई अन्य अनुतोष देने की अधिकारिता भी न्यायालय को नहीं हो। जैसा कि अपीलार्थी की ओर से तर्क रखा गया है अगर विधायिका द्वारा विशिष्ट न्यायालय की अधिकारिता को सीमित रखने की मंशा होती तो यह अधिक सुविधाजनक होता कि स्पष्ट शब्दों में न्यायालय की अनुतोष प्रदान करने की अधिकारिता को उस वर्ष या उसके बाद तक के लिए सीमित कर दिया जाता परन्तु ऐसे सीमित करने वाले कोई शब्द कानून में नहीं है। कानून के प्रवृत्त भाग में ऐसा कोई

प्रावधान नहीं है। हमारे मत अनुसार विशिष्ट न्यायालय को मोचन संबंधी वाद लेने का अधिकार है यद्यपि उन लेनदेन को पुनः खोलने की कोई अधिकारिता नहीं होगी। यह स्पष्ट है कि ऐसा कोई प्रश्न अभिवचनों में नहीं उठाया गया। यह कहा जा सकता है कि सुनवायी की क्षेत्राधिकारिता संबंधी कोई प्रश्न न तो विचारण न्यायालय के समक्ष अभिवचनों में और न ही विवाद्यकों में उठाया गया है। यह प्रश्न प्रथम बार इस न्यायालय के समक्ष वाद को रखते हुए उठा। अतः विचारण न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में प्रारम्भिक आपत्ति खारिज की जाती है।

इसके बाद यह तर्क दिया गया कि अनुच्छेद 12 परिसीमा अधिनियम के अन्तर्गत यह वाद एक वर्ष अवधि बाधित है। यह बिंदु इस प्रकार उठा जिन बंधक से मोचन चाहा गया है जैसा कि प्रकट होता है तीन बंधपत्र जो कि वर्ष 1898,1900 व 1901 के थे के द्वारा वादी के पिता उसके भाईयों के संदर्भ को छोडते हुए गुंडी के द्वारा बंधक रखा गया।

यह प्रकट होता है कि वर्ष 1903 में एक धन डिक्री तृतीय पक्षकार के पक्ष में हुई जो कि हमारे समक्ष नहीं है। मूल वाद में गुंडी को प्रतिवादी के रूप में रखा गया है परंतु उसकी मृत्यु के बाद उसका स्थान उसके भाई सदाशिव ने उसके वारिस व विधिक प्रतिनिधि के रूप में लिया। उस डिक्री के निष्पादन में बंधक संपत्ति को रहनदार के पुत्र फूलचंद जो कि विक्रय प्रमाणपत्र प्रदर्श डी-56 दिनांकित 31 अक्टूबर 1907 के द्वारा नीलामी

खरीद किया गया। इस नीलामी खरीद के आधार पर रहनदार की ओर से यह तर्क रखा गया कि जब तक उक्त विक्रय को अपास्त नहीं किया जाता, यह गुंडी और उसके हितबद्ध उत्तराधिकारी वादी पर बाध्यकारी होगा। उच्च न्यायालय ने यह निर्णित किया कि वादी के संबंध में अनुच्छेद 12 लागू नहीं है क्योंकि न तो वादी और न ही उसके पिता इस विक्रय में पक्षकार थे। अगर गुंडी स्वयं निष्पादन कार्यवाही में पक्षकार होता तो उसके विरूद्ध विक्रय उसकी संपत्ति और हितबद्ध उत्तराधिकारी पर बाध्यकारी होता परंतु यह प्रकट होता है कि गुंडी के स्थान पर उसके भाई सदाशिव निष्पादन प्रक्रिया में प्रतिस्थापित किया गया अगर सदाशिव गुंडी के हित प्रतिनिधि नहीं होता जैसा कि प्रकट होता है तो उसने गुंडी की संपत्ति का प्रतिनिधित्व नहीं किया होता और इसलिए उसके विरूद्ध विक्रय वादी के विरूद्ध कोई प्रभाव नहीं रखती परंतु जवाब में यह तर्क दिया गया कि प्रिवी काउंसिल के प्रकरण मलकारजुन बिन शिद्रमा पसारे बनाम नरहरी बिन शिवप्पा 1 का निर्णय यह अभिनिर्धारित करता है कि यदि संपत्ति का बेचान मदयून के वारिस के रूप में किसी गलत व्यक्ति को प्रतिस्थापित करते हुए भी किया जाए तो वह विक्रय मदयून की संपत्ति को उसी प्रकार बांधेगा जैसे कि निष्पादन कार्यवाही में सही विधिक वारिस को रिकॉर्ड पर लिया गया हो। यह मानते हुए कि प्रिवी काउंसिल का मलकारजुन केस का निर्णय सही है और एक पक्षीय निर्णय की खामियों से प्रभावित नहीं है यह तर्क दिया जा सकता है कि प्रस्तुत प्रकरण से वह निर्णय स्पष्टतः अन्तर

किया जा सकता है। मलकारजुन केस में निष्पादन न्यायालय को यह प्रश्न निर्णित करना था कि मदयून के वास्तविक विधिक वारिसान कौन हैं एवं न्यायालय ने न्यायिक तरीके से इस विवाद का निस्तारण करते हुए वास्तविक विधि वारिसान को निर्णित करते हुए रिकॉर्ड पर रखा। यह माना गया कि मदयून की संपत्ति का विक्रय उसके विधिक वारिसान द्वारा किया गया है जो वारिसान न्यायालय द्वारा निर्णित किए गए थे। प्रिवी काउंसिल ने यह निर्णित किया कि यद्यपि न्यायालय का इस प्रश्न का निर्णय कि कौन वास्तविक विधिक वारिसान है, गलत था परंतु वह निर्णय उस विवाद में दिया गया जो मदयून और उसके वास्तविक विधिक वारिसान को प्रभावित करता जब तक कि उसे न्यायिक प्रक्रिया के जरिये अपास्त नहीं कर दिया जाता। प्रस्तुत प्रकरण में ऐसा कोई न्यायिक निर्णय नहीं है जो इस विषय पर अल्प साक्ष्य हमारे समक्ष है उससे प्रतीत होता है कि मूल प्रतिवादी गुंडी की मृत्यु हुई और बिना किसी विवाद के उसके भाई सदाशिव को गुंडी के स्थान पर प्रतिस्थापित किया गया। न्यायालय को सदाशिव और मृतक गुंडी के वास्तविक विधिक वारिसान के बीच किसी विवाद को हल करने का प्रश्न नहीं था। निष्पादन कार्यवाही में संपत्ति का विक्रय सदाशिव को प्रतिस्थापित मदयून के रूप में स्वीकार किया गया। यह एक धन विक्रय था जो केवल सदाशिव के स्वामित्व अधिकारों और हित को अन्तरित करते थे। मलकारजुन केस अपीलार्थीगण को कोई मदद नहीं करता। वादी गुंडी की पुत्री उपरोक्त विक्रय से किसी भी प्रकार से

प्रभावित नहीं हुई। उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वो इस विक्रय को अपास्त कराने के लिए मुकदमा दायर करें जैसा कि उसने किया वह निष्पादन कार्यवाही को अनदेखा करते हुए इस बात की अधिकारिणी है कि वह इस मान्यता पर आगे चले जो कि कानून में न्यायोचित भी है कि विक्रय में उसकी विरासत को प्रभावित नहीं किया। अतः वाद अनुच्छेद 12 परिसीमा अधिनियम से बाधित नहीं होता।

अगला तर्क यह है कि यदि अनुच्छेद 12 प्रतिवादीगण को उपलब्ध नहीं भी हो तो भी वाद अनुच्छेद 134 मियाद अधिनियम के अन्तर्गत वर्जित है। अनुच्छेद 134 के अन्तर्गत वादी को बंधक रखी हुई संपत्ति जो बाद में रहनदार और मूल्यवान प्रतिफल के बदले अन्तरित की गई हो के कब्जा वापसी का वाद उस दिनांक से जब अंतरण की जानकारी वादी को प्राप्त हुई, के 12 वर्ष के भीतर प्रस्तुत करना है। दूसरे हाथ पर वादी की ओर से यह भी तर्क रखा गया कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 148 के साधारण नियम 60 वर्ष की परिसीमा प्रस्तुत प्रकरण पर लागू होती है। केस के इस भाग पर प्रतिवादी को यह कठिनाईयां झेलनी हैं कि जिन विक्रय पत्रों के आधार पर वह मियाद की दलील अनुच्छेद 134 को लेकर आया है वह इस केस के रिकॉर्ड पर नहीं है और इसलिए यह न्यायालय विक्रय पत्रों की शर्तों को जानने की स्थिति में भी नहीं है। अपीलार्थीगण ने इन कठिनाईयों को सुलझाने के लिए हमारा ध्यान वाद पत्र की मद संख्या

8 में किए गए कथनों की ओर आकृष्ट कराया परंतु यह केवल यह बताने संबंधी कथन है कि मूल रहनदार के अतिरिक्त प्रतिवादीगण को प्रतिवादी क्यों रखा गया। इस मद में ऐसा कोई स्पष्ट कथन नहीं है जो उन विक्रय पत्रों के द्वारा बेचे गए हित और अन्य हित की सीमाएं दर्शाता हो। अतः न्यायालय वास्तविक स्थिति जानने की स्थिति में नहीं है। वो विक्रय पत्र बेचे गए हित का स्वामेव प्राथमिक साक्ष्य होते वो विक्रय पत्र जो कि पंजीकद्ध दस्तावेज बताए गए हैं अगर किसी कारणवश उपलब्ध नहीं थे तो उनकी प्रमाणित प्रतियां द्वितीयक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत की जा सकती थीं परंतु अन्य प्रकार की साक्ष्य प्राप्त किए जाने की कोई नींव अभिवचनों में नहीं रखी गई जो सदैव पंजीकृत दस्तावेज के स्थान पर कमजोर प्रकृति की होगी। मियाद अधिनियम की अनुच्छेद 134 रहनदार उस विक्रय की परिकल्पना है जो रहनदार ने अपने हित से अधिक विक्रय कर दिया है। विधायिका ऐसे अन्तरती के कब्जे को स्वाभाविक रूप से गलत मानती हो और यदि रहन को ऐसे लेनदेन की जानकारी है तो यह उसके विपरीत होगा अतः 60 वर्ष के लंबे समय की अवधि को रहनदार या उसके हित में पश्चातवर्ती के हाथ में बंधक संपत्ति के मोचन के लिए घटाते हुए 12 वर्ष किया गया। अगर रहनदार ने उसे बंधक दिए गए हित से अधिक हित का अंतरण कर दिया तो उसके गलत कब्जे के लिए 12 वर्ष होंगे।

अनुच्छेद 134 को आकृष्ट करने के लिए प्रतिवादी को यह सकारात्मक रूप से साबित करना है कि रहनदार अथवा उसके हित में पश्चातवर्ती ने बंधक से अधिक अधिकारों का अंतरण कर दिया है। अगर ऐसा कोई प्रमाण नहीं है तो अनुच्छेद 134 में दिया गया समय मोचन से बंधन के बाद प्रतिवादी को उपलब्ध नहीं होगा। अनेक तर्क इस प्रश्न पर रखे गए कि मियाद के आरंभिक बिंदुओं की दिनांक साबित करने का भार किस पर होगा। प्रतिवादी अपीलार्थीगण की ओर से यह तर्क रखा गया कि यह विषय वादी की विशेष जानकारी में होने से वाद में उस दिनांक का खुलासा होना चाहिए जब वादी को उस अंतरण की जानकारी हुई। इसके विपरीत वादी और प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क रखा गया कि प्रतिवादी को इस हेतु अभिवचन और तथ्य जिसमें जानकारी की दिनांक हो को प्रमाणित करना होगा जिससे अनुच्छेद 134 की मियाद आकृष्ट होती है। हम प्रस्तुत प्रकरण में उपर वर्णित कारणों के अनुसार इस बात पर संतुष्ट नहीं हैं। अतः इस विवाद पर निर्णय दिए जाने की आवश्यकता नहीं है। अतः यह स्पष्ट है कि यदि अनुच्छेद 12 और 134 मियाद अधिनियम वादी के कब्जे विशेष अधिकार के आडे नहीं आते तो जो अनुच्छेद लागू होगा वह अनुच्छेद 148 है और उस अनुच्छेद को लागू करने से वाद समय में है।

इस प्रकरण के तथ्यात्मक पहलू पर विचार से पहले यह आवश्यक होगा कि अपीलार्थी और वाद के वर्जित के संबंध में जो अन्य दलील रखी गई हैं उन्हें विचार में लिया जाए। यह तर्क किया गया कि दूसरे प्रतिवादी के वारिसान के संबंध में वाद में पक्षकारों का नुक्स है। मामला प्रतिपेषित के बाद विचारण न्यायालय के आदेश दिनांक 27 मार्च 1946 से प्रकट होता है कि प्रतिवादी नं0 2 की मृत्यु 26 अप्रेल 1943 जिस समय बंबई उच्च न्यायालय के समक्ष अपील लंबित थी प्रतिप्रेषित किए जाने से पूर्व हो गई। तत्कालिक अपीलार्थी जो कि वादी ने उस प्रतिवादी के विधिक वारिसान को रिकॉर्ड पर लेने के लिए कोई कदम नहीं उठाया बाद में वादी ने उसके वारिसों को प्रतिस्थापित किए जाने का प्रयास किया परंतु न्यायालय ने प्रतिवादी की आपत्ति को स्वीकार करते हुए प्रतिस्थापन की अनुमति प्रदान नहीं की तब यह देखा गया कि उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित अपील प्रतिवादी सं0 2 के विरूद्ध उपक्षमित हो गई और प्रतिप्रेषण का जो आदेश उसक मृत्यु के उपरांत और उसके विधिक वारिसान की अनुपस्थिति में किया उन्हें प्रभावित नहीं करता। अतः यह तर्क रखा गया कि सम्पूर्ण वाद का उपक्षमन हो गया क्योंकि प्रतिवादी सं0 2 के वारिसान की अनुपस्थिति में व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 34 नियम 1 में वाद अपूणर है। उस नियम में यह आवश्यक है कि सभी व्यक्ति जो बंधक सुरक्षा या बंधक मोचन से कोई हित रखता हो उन्हें पक्षकार जोड़ा जाए तीन बंधकों में मूल रहनदार कस्तूरचंद कनीराम था। प्रतिवादी सं0 1 ने

मूल रहनदार के पश्चातवर्ती हित में वादोत्तर प्रस्तुत किया। अभिवचनों से यह प्रकट नहीं होता कि प्रतिवादी सं0 1 या उसके पूर्वजों के साथ सहरहनदार था वादपत्र की मद सं0 8 में प्रतिवादी सं0 2 के संबंध में केवल यह कथन किया गया है कि आर- एस- नं0 1735 प्रतिवादी सं0 2 के हिस्से में गई है। प्रतिवादी सं0 3 प्रतिवादी सं0 2 के सभी लेनदेन की देखभाल करता है और कनीराम कस्तूरचंद के नाम से दिलाई जा रही दुकान प्रतिवादी सं0 3 के हिस्से में आई है अतः प्रतिवादी सं0 1 का कहना नहीं है कि वह अन्य प्रतिवादीगण जिसमें प्रतिवादी सं0 2 भी शामिल है जो अब रिकॉर्ड पर किसी के द्वारा प्रतिनिधि भी नहीं है के साथ संयुक्त था अगर प्रतिवादी सं0 2 का कोई पृथक हित था तो वादपत्र के अनुसार केवल आर-एस- नं0 1735 तक सीमित था। प्रतिवादी सं0 3 की ओर से प्रस्तुत वादोत्तर में मद सं0 9 में कहा गया कि आर-एस- नं0 1735 का जो भाग बंधक रखा गया और जो वादपत्र के अनुसार प्रतिवादी सं0 2 की संपत्ति थी वास्तविकता में प्रतिवादी सं0 3 के कब्जे में स्वामी के रूप में थी। इससे यह प्रकट हुआ कि इस प्लॉट के संबंध में प्रतिवादी सं0 2 का कोई हित जीवित नहीं था। प्रतिवादी सं0 3 का यह कथन इस तथ्य से ही पुष्ट होता है कि प्रतिवादी सं0 2 ने वादोत्तर के उपरोक्त वर्णित कथन को चुनौती देते हुए अथवा उस प्लॉट या रहन रखी हुई संपत्ति के किसी भाग में अपना हक या हित बताते हुए कोई लिखित कथन नहीं किया। प्रतिवादी सं0 2 एक पक्षीय रहा क्योंकि उसका इस संपत्ति में

कोई हित नहीं है। किसी भी प्रकार से इस मामले में उसके वारिसान वाद में पक्षकार नहीं थे और न ही वाद में कोई निर्णय उन्हें बांधता है परंतु यह प्रकट होता है कि प्रतिवादी सं0 2 का यदि किसी आरंभिक समय में बंधक संपत्ति के किसी भाग पर कोई हित रहा हो तो अब कोई जीवित अधिकार या हित नहीं है।

यह भी तर्क दिया कि मूल प्रतिवादी सं0 8 की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर प्रतिवादी सं0 लगायत 8&जी प्रतिस्थापित किए गए। यह प्रकट होता है कि मूल प्रतिवादी सं0 8 के स्थान पर उसके वारिसान के रूप में प्रतिस्थापित 7 व्यक्तियों में से केवल प्रतिवादी सं0 8ई,8एफ और 8जी पर तामिल हुई और अन्य 8 डी पर कोई तामिल नहीं हुई। इन तथ्यों पर यह तर्क दिया गया कि बंधक से मोचन का वाद आवश्यक पक्षकार के अभाव में है। तर्कों के एक प्रकम पर यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादी सं0 8 के विरूद्ध वाद का उपक्षमन हो गया है और यह तर्क उच्च न्यायालय के समक्ष इस प्रकार से निर्णित किया गया कि आदेश 22 नियम 4 व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत यदि मृतक पक्षकार के अनेक विधिक वारिसान में से कुछ को रिकॉर्ड पर लिया जाए तो यह पर्याप्त होगा का निर्णय बोम्बे उच्च न्यायालय ने मूलचंद बनाम जयरामदास 1 का है। परंतु उपर बताए तथ्यों में व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 नियम 4 को लागू करने के कोई स्थान नहीं है। मृतक प्रतिवादी सं0 8 के सभी वारिसान

को प्रतिस्थापित किया जा चुका है। अतः आदेश 22 की पालना हो चुकी है अगर प्रतिस्थापित वारिसान में कालांतर में कुछ की तामील नहीं हुई तो यह वाद या अपील के उपक्षमन का प्रश्न नहीं है अपितु क्या वाद या अपील उन व्यक्तियों की अनुपस्थिति में सक्षम था। यह प्रकट नहीं होता कि अनुपस्थित पक्षकार वाद या अपील के लिए आवश्यक पक्षकार हो क्योंकि वे सभी संयुक्त रूप से दूसरों के साथ जो कि रिकॉर्ड पर थे बंधक संपत्ति में संयुक्त हित रखते थे। किन परिस्थितियों में उनकी तामील नहीं हुई या उन्हें रिकॉर्ड से तर्क किया गया हमारे समक्ष प्रस्तुत रिकॉर्ड से स्पष्ट नहीं है। प्रतिवादी सं0 8ई जो कि मूल प्रतिवादी सं0 8 का भाई है ने वादोत्तर पेश करते हुए यह कथन किया कि वह तथा विक्रेता प्रतिवादी सं0 7 12 वर्ष से अधिक अवधि से कब्जे में है और इस आधार पर वाद अवधि बाधित है। प्रतिवादी सं0 8 के स्थान पर जो अन्य प्रतिवादीगण रिकॉर्ड पर लाए गए में से कोई भी वादअपील में प्रतिवादी सं0 8 के इस कथन की आर-एस- नं0 242 पुराने सर्वे नं0 233 के भाग 6 एकड़ 32 गुंठा पर काबिज हैं को चुनौती देने के लिए उपस्थित नहीं हुए। अतः वाद या अपील के समन का कोई प्रश्न नहीं है। केवल प्रश्न जो कि सम्पूर्ण अनुसंधान के बाद अन्ततः आवश्यक या अनावश्यक पाया जाएगा कि क्या इस वाद में जो डिक्री पारित की जाएगी वो उन पर भी बाध्यकारी होगी जिन पर तामील नहीं हुई है। यह भी हो सकता है कि जो प्लॉट बंधक मोचन करवाया जाना चाहते हैं वो उसमें दिलचस्पी नहीं रखते हों इन

निष्कर्षों पर यह निर्णित किया जाना चाहिए कि प्रतिवादी द्वारा जो आरंभिक आपत्तियां वाद वर्जना के संबंध में उठाई गई खारिज की जावें अतः सम्पूर्ण वाद प्रतिवादी सं0 2 के वारिसान को रिकॉर्ड पर नहीं लेने के आधार पर अक्षम नहीं हो जाता।

वाद की वर्जना के संबंध में प्रस्तुत दलीलों को निर्णित किए जाने के बाद वाद के तथ्यात्मक पहलू पर उत्पन्न विवाद पर प्रस्तुत तर्क पर मुडते हैं। यह तर्क दिया गया कि वादी जो कि गुंडी की पुत्री है ने बंधक संपत्ति पर अपने स्वामित्व को सिद्ध नहीं किया। इस संबंध में तीन विवादित बंधपत्र के संबंध में आवश्यक तथ्यों को लिखना सुविधाजनक होगा। प्रथम बंधक दिनांक 4 जून 1998 कस्तूरचंद कनीराम के पक्ष में गुंडी पुत्र अप्पा द्वारा रूपये 700 जो राशि उसने सर्वे नं0 7 जिनका कुल रकबा 43 एकड़ 38 गुंठा होता है को रहन बंधक रखकर निष्पादित किया। यह कब्जा सहित रहन 4 वर्ष के लिए जिसमें गुंडी के दो भाई- सदाशिव व राम& उधार ली गई राशि जो कि गुंडी की व्यक्तिगत जिम्मेदारी दस्तावेज में अंकित शर्तों के अधीन प्रतिभू बनी। किंतु स्वीकृत रूप से रहन रखी गई संपत्ति तीनों भाईयों की पुश्तेनी भूमि है। दूसरा रहन इन्हीं पक्षकारों के बीच इसी संपत्ति के संबंध में दिनांक 25 मई 1900 का है ये रहनदार को 300 रूपये अग्रिम राशि जिसकी अदायगी को पुनः उसके दो भाई सदाशिव और रामा ने प्रतिभू के रूप में विश्वस्त किया और तीसरा रहनपत्र 200 रूपये

के अग्रिम राशि गुंडी को दिए जाने हेतु उसके उपर वर्णित भाई पुनः प्रतिभूति के रूप में होते हुए निष्पादित किया। इससे यह प्रकट होता है कि तीनों रहन उन्हीं पक्षकारों के बीच रहनदार व रहनदार के 2 भाई जो कि उन रहन में प्रतिभू के रूप में जुड़ते थे और संपत्ति जो रहन रखी गई वो तीनों भाईयों की थी। तीनों रहन के जरिये कुल 1200 की राशि मुख्य ऋणी गुंडी को दी गई। यह प्रकट होता है कि तीनों भाईयों में से रामा सबसे पहले मरा उसके बाद गुंडी 1903 में किसी समय अपने पीछे 2 पुत्रियों- वादी और प्रतिवादी सं0 13 प्रतिवादी का केस यह है कि संयुक्त पूर्वज अप्पा ने अपने जीवनकाल में तीनों पुत्रों के बीच बंटवारा कर दिया और हर एक को उसकी भूमि का अलग-अलग भाग देते हुए एक हिस्सा उसकी पत्नी के भरणपोषण हेतु रखा था। यह लेनदेन प्रदर्श पी-43 प्रदर्श पी-44 प्रदर्श पी-45 प्रदर्श पी-46 दिनांकित अगस्त 31 अथवा 1 सितंबर 1892 और प्रकटतः एक ही व्यवहार का भाग कायम करते हुए हैं। ये दस्तावेज औपचारिक रूप से उन भूखंडों को वर्णित करते हैं जो तीनों भाईयों और उनकी माता को भरणपोषण हेतु दी गई। सभी दस्तावेजों में यह कहा गया कि दस्तावेज का निष्पादक अप्पा के तीन पुत्र गुंडी सदाशिव और रामा वरिष्ठता के क्रम में&'जो एक साथ नहीं रह सकते दस्तावेज में आगे कहा गया& अतः आपकी सहमति से पृथकीकरण किया गया मैंने हर प्रकार से विभाजित करके भूमि दी है भूमि संपत्ति वगैरह जो एक तिहाई का है। वह निम्न प्रकार से है'इसके बाद जो संपत्ति

हर एक को पृथक-पृथक आवंटित की गई, का विवरण दिया गया। वादी का कथन है कि 1892- दस्तावेज की तिथि- परिवार की तीन शाखाएं संपत्ति के संबंध में अलग&अलग हो गई यदि हर स्थिति में उन्हें विभाजित नहीं भी माना जाए तो रामा की मृत्यु पर गुंडी व उसका भाई सदाशिव ने एक तिहाई हिस्से को आधा-आधा उत्तराधिकार में प्राप्त किया। कहा जाए तो उनकी माता और भाई की मृत्यु पर 2 भाई अप्पा द्वारा छोड़ी गई पुश्तेनी संपत्ति में आधी&आधी के मालिक हुए। वादी का आगे केस है कि तीनों रहन पत्रों में मूल रहनदार गुंडी था और उसके दो भाई प्रतिभू के रूप में राहिन के लिए अतिरिक्त सुरक्षा के रूप में थे। दूसरी ओर प्रतिवादी और अपीलार्थीगण की ओर से यह तर्क रखा गया कि प्रथम दृष्टया 1892 के उपर वर्णित दस्तावेज पक्षकारान के बीच mets and bounds सीमाएं के द्वारा वास्तविक विभाजन की साक्ष्य नहीं है बल्कि यह सुविधा के रूप में अधिक क्षमता और परिवार के शांतिप्रद व्यवस्था के लिए किए गए व्यवस्था को दर्शाता है। विकल्प में अगर यह दस्तावेज विभाजनपत्र माने जाते हैं तो पंजीकरण के अभाव में यह साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है। अधीनस्थ न्यायालय ने यह निर्णित किया कि विभाजन पत्र होने के पंजीकरण अधिनियम की रोशनी में साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है परंतु इस लेन-देन/व्यवहार को संपार्श्विक उद्देश्य के लिए यह दिखाने को कि उस समय से तीनों भाई संपत्ति के संबंध में अलग-अलग हो गए दर्शाता है और यह भी साक्ष्य देता है कि हर भाई पृथक सदस्य के रूप में रहता था और

पित्रात्मक संपत्ति में से एक तिहाई हिस्सा हर भाई ने प्राप्त किया। इस संबंध में अपीलार्थी ने 1892 के बाद तीनों भाईयों के आचरण के आधार पर तर्क रखा। जैसा कि तीनों बंधपत्रों में और विक्रय पत्र प्रदर्श डी&54 दिनांकित 17 जून 1909 से स्पष्ट है। अंतिम नामित दस्तावेज के द्वारा सदाशिव ने फूलचंद कस्तूरचंद जो कि मूल राहिन का पुत्र है को समस्त रहन संपत्ति 1500 रूपये में बेचान कर दी। विक्रय पत्र में भी यह कथन है कि तीनों भाई संपत्ति के लिए संयुक्त थे और विक्रय पत्र गुंडी और रामा द्वारा वर्ष 1903 से 1909 तक लिए गए व्यक्तिगत ऋण को चुकाने के लिए तथा बेचानकर्ता द्वारा जो ऋण लिया गया को चुकाने के लिए निष्पादित किया गया। अन्ततः यह लेखपत्र तथाकथित संयुक्त परिवार के सदस्यों की स्थिति के संबंध में निम्न प्रकार से महत्वपूर्ण घोषणा करता है।

जैसा मैंने आपको उपर बताए भूखंड में अपने अधिकारों हित और स्वामित्व को बेच दिया है मैं या मेरे वारिसान अथवा मेरी वसीयत को धारण करने वाले किसी का इस संपत्ति में किसी किस्म का कोई अधिकार नहीं होगा। मैं इस संयुक्त परिवार का जीवित पुरूष वारिस हूं मेरे अतिरिक्त किसी अन्य का इस भूमि में कोई हित अधिकार नही है। मैंने मेरे जो भी अधिकार इस संपत्ति में थे आपको बेचान कर दिए हैं।

लेकिन अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि वे दस्तावेज़-प्रदर्शन पी श्रृंखला, पूर्वोक्त-संपत्ति में अलगाव दिखाने के सीमित उद्देश्य के लिए भी साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं। इसलिए, सवाल यह है कि क्या वे दस्तावेज़ वर्तमान या भविष्य में, अचल संपत्ति के संदर्भ में एक सौ रुपये के मूल्य का या इससे अधिक का कोई अधिकार, स्वामित्व या हित, चाहे निहित या आकस्मिक हों, पंजीकरण अधिनियम की धारा 17(1)(बी) के अर्थ के अंतर्गत बनाने, घोषित करने, निर्दिष्ट करने, सीमित करने या समाप्त करने का तात्पर्य रखते हैं या संचालित करते हैं।, इस तर्क के समर्थन में हमारे समक्ष किसी न्यायिक अधिकारिता का हवाला नहीं दिया गया है। मिताक्षरा में विभाजन का अर्थ केवल सहदायिकी के सदस्यों की संयुक्त स्थिति का विच्छेद हो सकता है, अर्थात, जो एक बार संयुक्त स्थिति थी, वह एक विभाजित स्थिति बन गयी है, हालांकि मीट्स एंड बाउन्डस सीमा नियमन द्वारा किसी भी संपत्ति का कोई विभाजन नहीं हुआ है। विभाजन का मतलब यह भी हो सकता है कि आम तौर पर सहभागियों के बीच विभाजन को समझा जाता है जो हिंदू सहदायिकी के सदस्य नहीं हो सकते हैं। पूर्व अर्थ में विभाजन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि संयुक्त परिवार के सभी सदस्य सहमत हों, क्योंकि यह व्यक्तिगत स्वेच्छा का मामला है । यदि कोई सहदायिक स्वयं को परिवार के बाकी सदस्यों से अलग करने के लिए स्पष्ट भाषा में अपना व्यक्तिगत इरादा व्यक्त करता है, तो जहां तक उसका संबंध है, इसका प्रभाव परिवार के

बाकी सदस्यों से विभाजन पर पड़ता है। इस प्रक्रिया से, जो एक संयुक्त सहदायिकी थी, उसे सामान्य सहदायिकी में बदल दिया गया है। व्यक्तिगत सहदायिकों को विशिष्ट संपत्तियों या पार्सल को आवंटित करने हेतु, बाद के अर्थ में, विभाजन के लिए, सभी सहदायिकों के बीच समझौता नितांत आवश्यक है। ऐसा विभाजन मौखिक रूप से किया जा सकता है, लेकिन यदि पार्टियां लेन-देन को एक औपचारिक दस्तावेज़ तक सीमित कर देती हैं, जिसका उद्देश्य विभाजन का साक्ष्य होना है, तो इसका प्रभाव उस सहदायिक के एकाधिकार हक की घोषणा करने जैसा होता है, जिसे एक विशेष संपत्ति आवंटित की जाती है। इस प्रकार, का विभाजन धारा 17(1) (बी} की शर्तों के अंतर्गत है, जिसका प्रमुख भाग ऊपर उद्धृत किया गया है। लेकिन संपत्ति के विशिष्ट आवंटन के बिना केवल, हिस्सेदारी को परिभाषित करने के पूर्व अर्थ में विभाजन का अचल संपत्ति से कोई संबंध नहीं है। ऐसा लेन-देन केवल सदस्य या उन सदस्यों की स्थिति को प्रभावित करता है जिन्होंने खुद को बाकी सहदायिकता से अलग कर लिया है। पैतृक संपत्ति में एक निश्चित हिस्सेदारी रखने वाले सहदायिक के संयुक्त सहदायिकी से अलग सदस्य की स्थिति का परिवर्तन मौखिक रूप से किया जा सकता है या इसे किसी दस्तावेज़ द्वारा लाया जा सकता है। यदि दस्तावेज़ मीट्स और बाउंड्स सीमा नियमन द्वारा किसी भी विभाजन का सबूत नहीं देता है, तो यह माना जाता है कि एसा विभाजन बाद के अर्थ में विभाजन है, जो धारा 17 (1) (बी) के दायरे में नहीं आता है,

क्योंकि जब तक उस अर्थ में विभाजन, नहीं होता कि अलग हुए सदस्य का हित पहले की तरह पूरी संयुक्त संपत्ति पर जारी रहता है। ऐसा व्यवहार उस अनुभाग में निर्दिष्ट किसी भी चीज़ को करने का तात्पर्य या संचालन नहीं करता है। इसलिए, जहां तक ऊपर उल्लिखित दस्तावेज़ केवल पूर्व अर्थों में विभाजन के साक्ष्य हैं, वे धारा 17 के तहत अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य नहीं हैं, और इसलिए, धारा 49 के दायरे में नहीं आएंगे जो साक्ष्य के रूप में ग्रहण करने पर रोक लगाता है। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि वे दस्तावेज़ उस सीमित उद्देश्य के लिए साक्ष्य के रूप में सही उपयोग किए गए हैं।

अंत में, यह तर्क दिया गया कि यदि वर्ष 1892 के वे दस्तावेज़ तीन भाइयों के बीच बंटवारा साबित करने के लिए स्वीकार्य हैं, तो तीनों में से एक, राम और उनकी माँ की मृत्यु पर, गिरवी सहित पूरी पैतृक संपत्ति संपत्तियाँ, दोनों भाइयों में समान शेयरों में निहित हैं। वर्ष 1906 की नीलामी-खरीद (डी-57-डी) और विक्रय पत्र (वर्ष 1909 का प्रदर्शन डी-54) दोनों द्वारा, बंधक संपत्ति में सदाशिव का आधा हिस्सा, फूलचंद द्वारा द्वारा खरीदा गया था। इसलिए, वादी केवल अपने पिता गुंडी के अन्य हिस्से का दावा कर सकती थी। हमारी राय में, इस विवाद का कोई जवाब नहीं है क्योंकि तीन बंधक-बांडों के उचित निर्वचन और वादी के स्वयं के मामले पर यह स्पष्ट है कि पूरी पैतृक संपत्ति, न केवल गुंडी का हिस्सा,

गिरवी रखा गया था। इसलिए, अपील को सदाशिव के अधिकार वाले आधे हिस्से की सीमा तक अनुमति दी जाएगी, और मोचन के बाद कब्जे की डिक्री वादी के पिता के दूसरे आधे हिस्से तक ही सीमित होगी।

परिणामस्वरूप, उपरोक्त वर्णित सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है। चूंकि पार्टियों के बीच सफलता विभाजित हो गई है, इसलिए उन्हें अपनी लागत स्वयं वहन करने का निर्देश दिया गया है।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्रीमती रीटा तेजपाल द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।